**प्रकाशित:07 अगस्त 2018 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन पर प्रकाशित-**

# असहिष्णुता की आंधी और पुरस्कार वापसी की अंतर्कथा

**यह विस्तृत लेख असहिष्णुता एवं अवार्ड वापसी प्रकरण के दौरान साहित्य अकादमी के अध्यक्ष रहे हिंदी के प्रख्यात साहित्यकार विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है। यह लेख उस पूरे प्रकरण में भाजपा और श्री नरेंद्र मोदी के खिलाफ पूर्वग्रह से रची गयी एक सुनियोजित साजिश की पोल खोलता है।**

**अजीब** आंधी थी वह। धूल और बवंडर के साथ कुछ वृक्षों को धराशायी करती हुई। किस दिशा से आई है , केंद्र क्या है , इस पर अलग-अलग कयास लगाये जा रहे थे। भारत का संपूर्ण शिक्षित समुदाय जो अखबार पढ़ता और टी.वी. देखता है , इस विवाद में शामिल हो गया था। पुरस्कार वापसी पर पक्ष और विपक्ष – दो वर्ग बन गए थे। पक्ष हल्का, विपक्ष भारी।

मेरे पास लगातार देश-भर के अखबारों (हिंदू , हिंदुस्तान टाइम्स, टाइम्स आॅफ इंडिया, इंडियन एक्सप्रेस, ट्रिव्यून, टेलीग्राफ, इकनामिक टाइम्स, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान, जनसत्ता, राजस्थान पत्रिका, मातृभूमि, जागरण, सहारा, अमर उजाला , दैनिक भास्कर आदि) तथा 'भाषा', 'वार्ता', बी.बी.सी. आदि से फोन आते रहे। प्रारंभ में तो मैंने कुछ अखबारों को अति संक्षिप्त बयान दिए पर जब देखा कि वे अपने अनुसार तोड़-मरोड़ कर छाप रहे हैं तो मैंने अखबारों के फोन उठाने बंद कर दिए। टी.वी. चैनलों से भी ऐसा ही सलूक जरूरी लगा। फिर भी बहुत से लेखकों, मित्रों और परिचित-अपरिचित बुद्धिजीवियों के ई-मेल फोन , पत्र आदि लगातार मिलते रहे, जिनमें अधिकांश या कहूं लगभग सभी पुरस्कार वापस करने वालों के विरुद्ध थे।

जब से मैं भारतीय इतिहास का साक्षी हूं, असहिष्णुता पर इतनी लंबी बहस कभी नहीं हुई थी। 30 अगस्त, 2015 को कर्नाटक के कन्नड़ लेखक एम.एम. कलबुर्गी की गोली मार कर हत्या कर दी गई। इसी समय संयोग से हिंसा की एक-दो और घटनाएं घटीं। इसके विरोध में एक के बाद एक लगभग 40 लेखकों ने अपने साहित्य अकादेमी पुरस्कार लौटा दिए तथा सात-आठ ने अकादेमी की समितियों की सदस्यता से इस्तीफे दे दिए। यह प्रकरण लगभग तीन-चार महीने चलता रहा। देश-भर के अखबार , रेडियो और टी.वी. चैनल इसे प्रमुखता से छापते और प्रसारित करते रहे। फेसबुक और सोशल मीडिया पर निरंतर मत-मतांतर लिखे और पढ़े जाते रहे। इतना ही नहीं, संभवतः पुरस्कार लौटाने वाले लेखकों के संपर्क से 'न्यूयार्क टाइम्स'

(अमेरिका), 'टेलीग्राफ (लंदन) और 'डान' (करांची) ने तथा लेखकों की अंतरराष्ट्रीय संस्था 'पेन' ने भी इस मुद्दे को उठाया।

आश्चर्य यह कि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री को लेखकों की ओर से एक पत्रक देकर मांग की गई कि वे मोदी की ब्रिटेन यात्रा (जो उसी समय हो रही थी) में उनसे इस मुद्दे पर बात करें। मुद्दा था कि भारत में असहिष्णुता बढ़ रही है। बाद में इस मुद्दे के पक्ष-विपक्ष में कुछ इतिहासकार, वैज्ञानिक और फिल्म कलाकार भी जुड़ गए। कुछ लेखकों ने राष्ट्रपति को ज्ञापन भेजे। पत्र-पत्रिकाओं ने संपादकीय लिखे , परिचर्चाएं कराईं। देश के प्रमुख राजनेता भी इसमें शामिल हो गए – सोनिया गांधी, राहुल गांधी, आनंद शर्मा, कपिल सिब्बल, दिग्विजय सिंह (कांग्रेस), अमित शाह , अरुण जेटली , बेंकैया नायडू , रविशंकर प्रसाद , महेश शर्मा (भाजपा) , करुणानिधि (डी.एम.के.) , मुलायम सिंह यादव(सपा.) , नितीश कुमार (जे.डी.यू.) , लालू प्रसाद यादव (रा.ज.द.), गोपाल गांधी (आप) आदि। सबके अपने-अपने पक्षधर बयान थे। राष्ट्रपति और सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश ने भी अपने बयानों में इसकी चर्चा की। यहां तक कि संसद में इस विषय पर बहस हुई।

**जब सारे देश के अखबार , टी.वी. चैनल, सोशल मीडिया और शिक्षित समुदाय किसी एक ही विषय पर लगातार तीन-चार महीनों तक विमर्श और परस्पर जिरह करता रहे तो सत्य का छिपा रहना मुमकिन नहीं है। कितने समाचार-विचार छपे , कितने विमर्श और तर्क-वितर्क हुए इसका विवरण एक मोटी पुस्तक की शक्ल ले लेगा। सारांश रूप में कहा जा सकता है कि मीडिया द्वारा पूछे सवालों के माकूल जवाब पुरस्कार लौटाने वाले लेखक और उनके समर्थक दे नहीं पाए।**

सत्य की यही विशेषता होती है कि आरंभ में असत्य द्वारा चाहे जितना आच्छादित होता रहे, अंत में वह प्रकट हो जाता है। तो इस समूचे प्रकरण में शिक्षित समुदाय जिस निष्कर्ष पर पहुंचा वह यह था कि पुरस्कार लौटाने वालों का मुख्य प्रयोजन राजनीतिक था। असहिष्णुता का मुद्दा मात्र एक पैसे और 99 पैसे राजनीति। बल्कि कहें उनके मन में छिपी राजनीतिक गांठ को दो-तीन असहिष्णु घटनाओं ने खोल कर फैला दिया। यदि ये घटनाएं न भी घटतीं तो कोई अन्य घटना इनकी अभिव्यक्ति के लिए मिल ही जाती। या यों भी कह सकते हैं कि यदि ये घटनाएं दूसरी शासन सत्ता में हुई होती तो कुछ लेखक इतने उत्तेजित न होते। इस निष्कर्ष पर पहुंचने वाले शिक्षित समुदाय के पास कुछ अकाट्य प्रमाण हैं। एक पुष्ट प्रमाण यह कि आम चुनाव (2014) के आखिरी दिनों में मीडिया के शोर से जब यह स्पष्ट होने लगा कि मोदी के नाम पर भाजपा सत्ता में आ रही है तो कन्नड़ लेखक यू.आर. अनंतमूर्ति ने यह बयान दिया था –**''यदि नरेन्द्र मोदी देश के प्रधानमंत्री होंगे तो मैं देश छोड़ कर चला जाऊंगा।''**

यह बयान जो भारत के किसी विपक्षी नेता, यहां तक कि लालू प्रसाद यादव ने भी नहीं दिया, एक लेखक द्वारा दिया गया। क्रोध और घृणा युक्त यह बयान कोई तानाशाही प्रवृत्ति का व्यक्तिवादी और अलोकतांत्रिक व्यक्ति ही दे सकता है , स्वस्थ चित्त लेखक नहीं। अनंतमूर्ति के मित्र श्री अशोक वाजपेयी जिन्हें अकादेमी पुरस्कार अनंतमूर्ति के साहित्य अकादेमी अध्यक्ष काल में मिला था , मोदी विरोधी अभियान के एक स्तंभ थे जो आम चुनाव के ठीक पहले कुछ लेखकों द्वारा चलाया जा रहा था। 9 अप्रैल, 2014 के दैनिक 'जनसत्ता' (दिल्ली) के माध्यम से इन लेखकों (लगभग 40) ने वोटरों से भाजपा को वोट न देने की अपील की थी। इनमें अशोक वाजपेयी के साथ राजेश जोशी और मंगलेश डबराल के नाम शामिल हैं जिन्होंने साहित्य अकादेमी पुरस्कार लौटाए।

यहां यह कहना उपयुक्त लगता है कि पुरस्कार लौटाने या इस्तीफा देने वाले लेखकों के भी तीन वर्ग थे – एक, वे जो मोदी सरकार और अकादेमी के व्यक्तिगत विरोध के चलते आंदोलन के अगुआ और मुख्य किरदार थे। इनकी संख्या 5 से अधिक नहीं थी। इनमें वाजपेयी और वामदलों के लेखक शामिल हैं। दूसरे , वे जो इन मुख्य किरदारों के घनिष्ठ या मित्रा थे जिन्होंने मित्रा धर्म के निर्वाह या व्यक्तिगत दबाव और पैरवी में ऐसा किया। इनकी संख्या लगभग 25 थी।

तीसरे, वे जो लेखकों की सहज क्रांतिकारी या यशलिप्सु प्रवृत्ति वश इस महोत्सव में अपना नाम चमकाने और लोकप्रियता हासिल करने के लिए (जैसा कि हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक प्रो. नामवर सिंह ने कहा है) शामिल हो गए। इनकी संख्या लगभग 15 है। इस प्रकार विश्लेषक महसूस करते हैं कि कुल पांच लेखकों ने अपनी पूर्व प्रतिबद्धता , व्यक्तिगत विरोध और राजनीतिक कारणों से असहिष्णुता का इतना बड़ा मुद्दा खड़ा किया।

**मुझे प्रामाणिक सूत्रों से खबर मिली और अनेक लेखकों ने व्यक्तिगत बातचीत में बताया भी कि उनसे पुरस्कार लौटाने के लिए संपर्क किए गए। इनमें नामवर सिंह , कुँवरनारायण और केदारनाथ सिंह जैसे नाम भी हैं। लीलाधर जगूड़ी और अरुण कमल उन दिनों सिक्किम यात्रा पर थे जब एक पत्रकार ने कई बार उन्हें पुरस्कार लौटाने के लिए प्रेरित किया। जगूड़ी पर तो कई लोगों ने फोन करके दबाव बनाया। जैसा कि उन्होंने मुझे बताया। सतीश कुमार वर्मा , राजेंद्र प्रसाद मिश्र, गोविंद मिश्र आदि ने भी ऐसा ही बताया।**

रामशंकर द्विवेदी ने 30 अक्टूबर को फोन पर बताया कि उन्हें साहित्य अकादेमी के एक अवकाश प्राप्त लेखक ने फोन पर पुरस्कार लौटाने के विषय में पूछा। वे पांच लेखक जो इस आंदोलन के संचालक थे अपने निकट के लेखकों द्वारा उनके परिचित लेखकों को बार-बार फोन कराकर पूछते रहते थे – ''आप कब लौटा रहे हैं ? या ''क्या आप नहीं लौटा रहे हैं ?'' आदि। यह पुरस्कार लौटाने के लिए अप्रत्यक्ष अनुरोध था। इस बात के पक्के प्रमाण हैं कि असहिष्णुता विरोधी आंदोलन स्वतःस्फूर्त नहीं था , बल्कि इसके लिए कुछ लेखकों ने देश

व्यापी नेटवर्किंग और अभियान चलाया था। 12 अक्टूबर को मुझे भारत में अंग्रेजी के वरिष्ठतम लेखक (93 वर्षीय) शिव के. कुमार का ई-मेल मिला जो इस प्रकार है –

**My Dear Tiwari Ji,**

**Over the past few days, the media has been flashing news about several people resigning from the General Council and surrendering their SahityaAkademi's Award. A couple of these 'rebels' have even advised me to return the SahityaAkademi award and even surrender my Padma Bhushan. But I have sternly refused to do so. It is all political gimmickry because they just want publicity in the newspapers. The fact is that the SahityaAkademi is neither anti-secular nor as if muzzled freedom of expression. They just want to gain publicity in the media. I hope you are not perturbed over this exercise to taint the image of the SahityaAkademi. My advice to you is to let these detractors keep howling. They don't realize that the present President of the SahityaAkademi is himself a distinguished Hindi poet dedicated to creative writing.**

**I understand that you are returning to Delhi on the 18th and you should be able to sort out all problems. I am waiting to receive a copy of your collection of poems. Keep writing and ignore everything else.**

**God bless you.**

**Yours affectionately,**

**Shiv. K. Kumar**

18 अक्टूबर को ए.वी.पी. चैनल ने असहिष्णुता पर एक व्यापक बहस आयोजित की थी जिसमें सभी लेखकों के आने-जाने, रहने तथा उनके लिए गाड़ियों की व्यवस्था की थी। गोविंद मिश्र, गिरिराज किशोर, गणेश देवी, मंगलेश डबराल, मुनव्वर राणा आदि उसमें उपस्थित थे। बहस के बीच में ही राणा ने अपने झोले से अकादेमी का प्रतीक चिन्ह और चोंगे की जेब से चेक बुक निकाल कर मेज पर रख दिया और कहा कि इसे अकादेमी कार्यालय तक पहुंचा दें। क्या यह स्वतःस्फूर्त था? क्या राणा घर से योजनापूर्वक इसे लौटाने की नीयत से साथ नहीं ले गए थे?

राणा ने अकादेमी पुरस्कार के लिए कुछ ऐसी अपमानजनक बातें कहीं जिस पर अकादेमी पुरस्कार प्राप्त लेखकों को उनकी भर्त्सना करनी चाहिए थी। राणा ने कहा कि प्रतीक चिन्ह कहीं उनके घर के कोने में पड़ा था जिसे उन्होंने ढूँढ़कर निकलवाया। वे इसे अपने ड्राइंगरूम में रखने लायक नहीं समझते। वे इसे गोमती में बहा देना चाहते हैं। आदि। यह तब है जब राणा को अकादेमी पुरस्कार दिए जाने के बाद एक विवाद छिड़ा था कि वे मंच के कवि हैं , उन्हें यह पुरस्कार मिलना ही नहीं चाहिए था। राणा ने यह भी कहा कि यदि मोदी जी कह दें तो वे पुरस्कार नहीं लौटाएंगे। कुछ लोगों ने बताया कि उन्होंने यह भी बयान दिया है कि वे

तो मोदी जी के जूते तक उठाने को तैयार हैं। लेकिन यह बयान मैंने स्वयं नहीं पढ़ा है। ए.वी.पी. चैनल का उपर्युक्त दृश्य मैंने स्वयं देखा था।

**उस समय तो मैं हक्का-बक्का रह गया जब किसी ने पुरस्कार वापस करने वाले गुजराती लेखक श्री गणेश देवी पर यह आरोप लगाया कि उनके एन.जी.ओ. को फोर्ड फाउंडेशन से 12 करोड़ रुपए का अनुदान प्राप्त होता है जिसे मोदी ने रोक दिया और इसीलिए उन्होंने पुरस्कार लौटाया है। गणेश देवी का चेहरा काला पड़ गया और वे कोई जवाब नहीं दे पाए। बाप रे, बारह करोड़ प्रतिवर्ष! मुझे तो अब भी विश्वास नहीं होता।**

पुरस्कार लौटाने वाले लेखकों ने पुरस्कार लौटाने के दो कारण बताए – 1. देश में असहिष्णुता और हिंसा का वातावरण है तथा लेखकों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर हमले हो रहे हैं। प्रधानमंतत्री मोदी जी इस पर मौन हैं। 2. प्रो. कलबुर्गी की हत्या पर साहित्य अकादेमी ने दिल्ली में शोकसभा करके निंदा नहीं की।

असहिष्णुता के विरुद्ध तथा लेखकों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्राता के पक्ष में आवाज उठाना लेखकों का वक्तव्य है। साहित्य अकादेमी ने दिल्ली में शोकसभा नहीं की , यदि यह विरोध सहज, स्वाभाविक ढंग से सामने आया होता , सरकार और अकादेमी को उसकी चूक के प्रति सावधान और सचेत करते , जैसे कोई मित्र या शुभचिंतक करता है , तो निश्चय ही वातावरण दूसरा बनता। पर वास्तव में विरोध करने वालों में वह अपनत्व भाव था ही नहीं। उनका प्रच्छन्न एजेंडा सरकार और साहित्य अकादेमी पर प्रहार करना था। उन्हें सुधारना नहीं , उनसे बदला लेना था। यह लेखकों का लेखकीय नहीं , उनका राजनीतिक आचरण था। इसीलिए उन्होंने इसे प्रायोजित ढंग से एक आंदोलन का रूप दिया और इसे देशव्यापी तथा विश्वव्यापी बनाने की कोशिश की। यह भीतर से सद्भाव प्रेरित नहीं, दुर्भाव प्रेरित था।

भाव का अंतर होने से कर्म का स्वरूप और उसका प्रभाव बदल जाता है। बिल्ली अपने तेज नुकीले दाँतों से अपने नवजात बच्चों को उठाती है और उनकी मुलायम त्वचा पर कोई खरोंच तक नहीं लगती, लेकिन उन्हीं दाँतों से वह अपने शिकार को लहूलुहान कर देती है। यह भाव का अंतर है। इसी अंतर के कारण असहिष्णुता आंदोलन वृहत्तर बुद्धिजीवी समाज द्वारा अंततः निंदित हो कर रह गया। मीडिया ने अपनी रेटिंग बढ़ाने के लिए इसे और हवा दी तथा पक्ष-विपक्ष में बहसें आयोजित करने लगी। विपक्षी वक्ताओं ने जब आंदोलन का बवंडर उठाने वालों से सवाल करने शुरू किए तो वह या तो हकलाने लगे या बगले झांकते नजर आए। माकूल उत्तर न उनके पास था, न वे दे सके। विपक्ष के वे प्रश्न क्या थे?

1. आपात्काल (1975-76) में जब अभिव्यक्ति की आजादी पर वास्तव में प्रतिबंध था और देश में असली फासीवाद था तब तो वामदलों और कांग्रेस के लेखकों ने उस आपात्काल का समर्थन किया था। कश्मीरी उर्दू लेखक गुलाम नवी खयाल जिन्होंने

पुरस्कार लौटाया है, ने तो ठीक 1976 में ही साहित्य अकादेमी पुरस्कार लिया था। तब क्या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता थी?

2. जब कश्मीरी पंडितों को घाटी से आतंकित करके भगा दिया गया , उनकी बहू-बेटियों के साथ बलात्कार हुआ, उनकी संपत्ति पर कब्जा कर लिया गया, जब देश-भर में सिखों का कत्लेआम हुआ, असम में नरसंहार हुआ, हिंदी बोलने वाले मजदूरों की हत्याएं हुईं , पंजाब में खालिस्तानी आतंकवादियों ने कवि पाश की हत्या की , अनेक पत्रकारों की हत्याएं हुईं, उत्तर प्रदेश में मानबहादुर सिंह नामक कवि की हत्या हुई, महाराष्ट्र में उत्तर प्रदेश – बिहार के हिंदीभाषियों को रेल स्टेशनों पर दौड़ा-दौड़ा कर शिवसेना कार्यकर्ताओं ने पिटाई की, 1989 में भागलपुर दंगे में 1200 लोग, 1990 में हैदराबाद दंगे में 365 लोग मारे गए और 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस हुआ तब लेखकों ने पुरस्कार क्यों नहीं लौटाए?
3. दिल्ली में निर्भया कांड हुआ, अन्ना हजारे का आंदोलन हुआ, तब तो सारा देश संड़क पर उतर गया था। फिर लेखक क्यों नहीं सामने आए?
4. मकबूल फिदा हुसैन जब देश छोड़कर गए , सलमान रश्दी की पुस्तक पर जब रोक लगी, लेखकों ने पुरस्कार क्यों नहीं लौटाए?
5. तस्लीमा नसरीन को मुस्लिम कट्टरपंथियों ने बंगाल से निष्कासित कराया, हैदराबाद में अपमानित किया। उन्होंने स्वयं बयान देकर लेखकों के वर्तमान विरोध को selective अर्थात् चुनाव करके विरोध करना बताया है। उन्होंने अपने बयान में कहा कि भारत के जो बुद्धिजीवी अपने को सेक्युलर कहते हैं वे केवल हिंदू कट्टरवाद का विरोध करते हैं। मुस्लिम कट्टरवाद पर वे मौन रहते हैं।
6. मोदी जी को वोट न देने की अपील करने वाले तथा वामदलों के लेखक ही क्यों इस अभियान में शामिल हैं? क्या यह अपनी विरोधी विचारधारा के प्रति असहिष्णुता नहीं ? यह सहिष्णुता और असहिष्णुता की टक्कर है या दो असहिष्णुताओं की?
7. जिन राज्यों में हत्या की घटनाएं (कर्नाटक , उत्तर प्रदेश) हुई हैं उनसे प्राप्त पुरस्कार लेखकों ने क्यों नहीं लौटाए? कानून-व्यवस्था तो राज्य सरकारों का ही क्षेत्र है।
8. आज लेखक अखबारों में और मीडिया पर मोदी के विरुद्ध खुलकर बोल रहे हैं , न उनके लिखने पर प्रतिबंध है , न छपने पर, न बोलने पर, तो यह आरोप क्यों लगा रहे हैं कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्राता नहीं है?

उपर्युक्त प्रश्नों पर मीडिया के सामने कुछ लेखकों ने जो उत्तर दिए वे दर्शकों और श्रोताओं को हास्यास्पद लगे। मृदुला गर्ग, जिन्होंने पुरस्कार नहीं लौटाया था, न उस आंदोलन में शरीक थीं, ने इस प्रश्न पर कि लेखकों ने वर्तमान सरकार के पहले घटी ऐसी घटनाओं पर प्रतिक्रिया क्यों नहीं की, कहा कि **यह लेखक की इच्छा पर निर्भर है कि वह कब प्रतिक्रिया करेगा और कब उसमें किन घटनाओं के विरुद्ध ऐसी संवेदना पैदा होगी** । यह उत्तर तो यह प्रकट करता

है कि लेखक selective घटनाओं और समयों पर विरोध करेगा। इससे क्या तस्लीमा नसरीन का आरोप प्रमाणित नहीं हो जाता और विपक्ष का यह आरोप भी कि लेखकों का यह विरोध मोदी सरकार से है?

इस प्रश्न पर कि काशीनाथ सिंह ने उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का पुरस्कार क्यों नहीं लौटाया जबकि वह पूर्णरूपेण सरकारी पुरस्कार है और अखलाक हत्या की घटना उत्तर प्रदेश (दादरी) में ही घटित हुई थी, काशीनाथ सिंह ने कहा, ''क्योंकि उत्तर प्रदेश में अभिव्यक्ति की आजादी है।'' फिर प्रश्न होगा कि उत्तर प्रदेश में सहिष्णुता है तो अखलाक की हत्या क्यों हुई ? दूसरा प्रश्न कि क्या उत्तर प्रदेश भारत के बाहर है? भारत में आजादी नहीं और उत्तर प्रदेश में है, यह कौन-सा तर्क है?

काशीनाथ जी का यह तर्क मैंने स्वयं नहीं सुना था , इसे गोविंद मिश्र ने मुझे बताया था। लेकिन प्रसंगवश यह उल्लेख जरूरी है कि काशीनाथ जी ने स्वयं फोन पर मुझसे कहा था कि वे पुरस्कार नहीं लौटाएंगे , जबकि इसके तीन दिन बाद ही उन्होंने मीडिया के सामने फोटो खिंचवाकर पुरस्कार वापसी की घोषणा कर दी थी। क्या इस बीच उन पर कोई दबाव पड़ गया और उन्होंने मित्र धर्म का निर्वाह कर दिया? ज्ञातव्य यह भी है कि काशीनाथ जी ने भी मोदी के चुनाव में उनका विरोध किया था।

**एक टी.वी. चैनल पर जब अशोक वाजपेयी से ऐंकर ने पूछा कि मकबूल फिदा हुसेन जिस समय देश छोड़कर गए या सलमान रस्दी की पुस्तक प्रतिबंधित हुई , कांग्रेस की सरकार थी। तब उन्होंने विरोध नहीं किया। इस पर वाजपेयी जी का चेहरा उतर गया। ऐसे ही किसी प्रश्न पर केकी एन. दारूवाला मौन हो गए। उन्होंने 1984 (सिखों की हत्या के वर्ष) में पुरस्कार लिया था। वाजपेयी जी ने 1994 में पुरस्कार लिया था जिसके दो वर्ष पहले ( 1992) बाबरी मस्जिद का ध्वंस हुआ था।**

अपने नामचीन लेखकों को सवालों पर चुप हो जाते या हकलाते देख प्रबुद्ध श्रोता और दर्शक सोच रहे थे कि इस देश में गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, महँगाई, किसानों की आत्महत्या आदि जमीनी मुद्दे हैं जिन पर कोई लेखक नहीं बोल रहा। दाल 170 रुपए किलो, प्याज 50 रुपए किलो, पेट्रोल-डीजल सब महंगे हो रहे हैं और ये लेखक असहिष्णुता पर चिल्ला रहे हैं। क्या सचमुच यह मुद्दा मैन्यूफैक्चर्ड है?

उन्हीं दिनों 'टाइम्स आॅफ इंडिया' ने एक बड़ा-सा कार्टून छापा था जिसमें एक ओर फंदे से लटकते किसानों का चित्र था जिस पर लिखा था - ''भारत में पांच किसान रोज आत्महत्याएं करते हैं।'' दूसरी ओर मुंह पर पट्टी बांधे लेखकों का चित्र था। अर्थात् इतनी दारुण घटना पर भी लेखक चुप। उन दिनों यह सब कुछ मेरे लिए बेहद तकलीफदेह था। 'बेहद' इसलिए कि शिक्षित और प्रबुद्ध भारतीय जन का लेखकों से मोहभंग हो रहा था। उन्हें लगता था कि

राजनीतिक नेताओं की तरह ये लेखक भी अपने निहित स्वार्थों के कारण जनता को गुमराह कर रहे हैं।

लेखक आग्नेय के अनुसार , **''ये सारे लेखक खाते-पीते , भरे पेट डकार लेते संपन्न लोग हैं , जिन्होंने अपने सारे जीवन में अभी तक कुछ नहीं खोया है , सब पाया-ही-पाया है। जहां तक मेरी जानकारी है ये लोग कभी सर्वहारा के संघर्ष से नहीं जुड़े हैं और न कभी भारत के किसानों की किसी लड़ाई में शामिल हुए हैं। इन लेखकों को न तो कभी किसी नौकरी से निकाला गया है और न कभी उन्होंने स्वयं किसी मुद्दे पर अपनी नौकरी छोड़ी। अधिकांश सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन ले रहे हैं या पेंशन लेंगे।''** (लहक, अक्टूबर-नवंबर 2015)

**पुरस्कार वापसी लहर के थम जाने के बाद का समय था। 12 जनवरी, 2016 को रात में 8-9 बजे मैं कोई हिंदी न्यूज चैनल देख रहा था। मालदा (पं. बंगाल) या पूर्णिया (बिहार) में थाना फूंकने की घटना। एक लाख की भीड़। 'कमलेश तिवारी को फांसी दो ' के नारे। वहां हिंदू अल्पसंख्यक हैं। टी.वी. पर नीचे बार-बार कैप्सन आ रहा था - ''कहां हैं असहिष्णुता पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार लौटाने वाले साहित्यकार ? इतिहासकार, फिल्मकार, वैज्ञानिक कहां हैं? अब चुप क्यों हैं?'' भविष्य में गूंजने वाले ऐसे प्रश्नों का उत्तर कौन देगा?**

जिन लेखकों ने अकादेमी पुरस्कार लौटाए उनमें से लगभग सभी ने अकादेमी पर एक ही आरोप लगाया कि उसने प्रो. कलबुर्गी की शोकसभा दिल्ली में करके निंदा नहीं की। मगर इसमें मेरी या अकादेमी की नीयत पर संदेह नहीं होना चाहिए। वस्तुतः अकादेमी की पूर्व परंपरा ऐसी ही रही है। उसने कभी ऐसी घटनाओं पर कोई कदम नहीं उठाया। पूर्व में कभी किसी लेखक ने, जिन गंभीर घटनाओं के उल्लेख ऊपर हुए हैं, उन पर अकादेमी से आगे आने की ऐसी मांग भी नहीं की है जैसी इस बार कर रहे हैं। इस संदर्भ में मैं नयनतारा सहगल की प्रशंसा करता हूं जिन्होंने आपातकाल में अकादेमी को पत्र लिखकर एक्जीक्यूटिव बोर्ड की बैठक बुलाने तथा आपात्काल की निंदा करने को कहा था। लेकिन तब भी निंदा करने की कौन कहे, अकादेमी ने एक्जीक्यूटिव बोर्ड की बैठक तक नहीं बुलाई। फिर सवाल है कि उसी अकादेमी से नयनतारा जी ने पुरस्कार क्यों लिया , जबकि उनके पुरस्कार लेने ( 1986) के दो वर्ष पहले देश में सिखों का कत्लेआम भी हुआ था।

बहरहाल, मैंने तो वर्तमान घटनाक्रम के दो वर्ष पहले ( 2014) प्रकाशित अपनी आत्मकथा (अस्ति और भवति, नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ. 379) में न केवल नयनतारा जी के आपातकाल के पत्र का उल्लेख किया है वरन् उसे न स्वीकार करने को 'अकादेमी के माथे का सबसे बड़ा धब्बा- भी कहा है। इससे लेखक की स्वतंत्रता के प्रति मेरा भाव समझा जा सकता है। जहां तक इस बार की बात है, अकादेमी का पूर्व इतिहास देखते हुए मैं इस घटना की गंभीरता की कल्पना नहीं कर सका।

पुरस्कार वापस करने वाले लेखकों की सहिष्णुता यह रही कि उन्होंने मुझे या अकादेमी को बिना कोई चेतावनी दिए सीधे पुरस्कार ही लौटा दिए और उनके पुरस्कार लौटाने की सूचना अकादेमी को सीधे अखबार से ही मिली। **प्रो. नामवर सिंह** ने भी इसे लेखकों का दोष माना है – **''इन लोगों को साहित्य अकादेमी से कहना चाहिए था कि आप अपना विचार बताइए अन्यथा हम अपना पुरस्कार लौटाएंगे। अगर साहित्य अकादेमी कहती कि आप लोगों को जो करना है करिए, तब इन लोगों ने पुरस्कार लौटाए होते तो मैं इसे सही मानता। लेकिन जिस तरह साहित्यकारों ने अकादेमी को बिना मौका दिए पुरस्कार लौटाया , बिना चेतावनी दिए पुरस्कार लौटाया , यह गैर-जिम्मेदाराना बर्ताव है। इसे वाजिब नहीं कहा जा सकता।''** (अगासदिया: अक्टूबर-दिसंबर 2015)। हां, केकी दारूवाला ने जरूर मुझसे फोन पर बात की। तब तक एक्जीक्यूटिव की बैठक की तिथि तय हो चुकी थी और मैंने उनको इसकी सूचना दे दी। लेकिन उन्होंने इसकी प्रतीक्षा नहीं की। संभवतः उन पर किसी का दबाव रहा हो। हालांकि बहुत से लेखकों ने एक्जीक्यूटिव की बैठक की प्रतीक्षा करना उचित समझा और बाद में उसके प्रस्ताव से सहमत भी रहे।

इस गंभीर और राजनीतिक रूप ले चुके मसले पर मैं अकेले कोई बयान नहीं देना चाहता था। मैं चाहता था कि संस्था द्वारा आधिकारिक और सामूहिक बयान ज्यादा प्रभावकारी होगा। यहां बताना प्रासंगिक होगा कि एक्जीक्यूटिव का वह बयान जिसकी व्यापक प्रशंसा और स्वीकृति हुई, मूल रूप से मेरा ही लिखा हुआ था। मैं व्यक्तिगत बयान इसलिए भी नहीं देना चाहता था, क्योंकि आरंभ में दिए गए मेरे बयानों को पक्ष-विपक्ष बन चुके अखबारों ने तोड़-मरोड़कर छापा था।

मैंने अपने आरंभिक बयानों में यही कहा था ''कि साहित्य अकादेमी लेखकों की स्वाधीनता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान करती है। वह लेखकों के साथ है। मगर पुरस्कार लौटाने का औचित्य नहीं है , क्योंकि पुरस्कार गुणवत्ता के आधार पर लेखकों द्वारा ही दिया जाता है। इसमें सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। पुरस्कृत पुस्तकों के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होते हैं। पुरस्कार लौटाने से जटिलताएं बढ़ेंगी , उनके अनुवाद आदि प्रभावित होंगे और कोई व्यक्ति उनकी रायल्टी आदि पर भी सवाल खड़े कर सकता है। अतः लेखकों को विरोध के अन्य तरीके अपनाने चाहिए और इसे राजनीतिक रंग नहीं दिया जाना चाहिए।'' मेरे इसी बयान को अखबारों ने अपने-अपने ढंग से प्रकाशित किए जिसे एक-दो लेखकों ने सही संदर्भ में नहीं ग्रहण किया , जिनमें नयनतारा जी भी हैं। (हालांकि बाद में मेरी आशंका सही साबित हुई। इस मामले ने राजनीतिक रूप भी ले लिया और दिल्ली हाईकोर्ट में एक जनहित याचिका भी दाखिल हो गई जिसमें रायल्टी आदि के मामले उठाए गए।)

16 सितंबर, 2015 को मैं एक ही दिन के लिए दिल्ली में था। उसी दिन श्री मुरली मनोहर प्रसाद सिंह और विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ तीन-चार लेखक मेरे कार्यालय में मिले। वे लोग

कलबुर्गी जी की हत्या पर अकादेमी में शोकसभा करने के लिए कह रहे थे। उन्होंने एक पत्रक भी दिया जिस पर जनवादी लेखक संघ और जन संस्कृति मंच के कुछ लेखकों के हस्ताक्षर थे। तब तक उदय प्रकाश द्वारा इसी घटना पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार लौटाने की सूचना (5 सितंबर, 2015) आ चुकी थी और फेसबुक पर बहुत कुछ लिखा जाने लगा था। इस घटना ने राजनीतिक रंग लेना शुरू कर दिया था। मैंने उन लोगों से कहा कि अकादेमी के उपाध्यक्ष कर्नाटक के ही हैं और स्व. कलबुर्गी के मित्र भी हैं। उन लोगों ने बेंगलुरु में ही शोकसभा का निश्चय किया है। सेक्रेट्री ने बताया है कि उसकी तिथि भी निश्चित हो चुकी है। अतः यहां दिल्ली में दुबारा करना उपयुक्त नहीं लगता। वे लोग दिल्ली में और अकादेमी में ही शोकसभा क्यों करना चाहते थे, इस संबंध में वे स्वयं आत्मपरीक्षण कर सकते हैं। क्या इस घटना को राजनीतिक रंग देना चाहते थे?

श्री के. सच्चिदानंदन ने सचिव, साहित्य अकादेमी के माध्यम से एक ई-मेल मुझे किया था जो मुझे पढ़ने को नहीं मिला। मैं स्वयं कंप्यूटर चलाना नहीं जानता, किसी को बुलाकर ई-मेल आदि देखता हूं जिसमें विलंब हो जाता है। संभव है सचिव ने वह मेल मुझे फारवर्ड किया हो, जिसे मैं देख नहीं पाया। अतः उसका जवाब उन्हें न दे सका। इसे मेरा 'अहंकार तथा निरंकुशता' (उन्हीं के शब्द) समझकर उन्होंने अकादेमी की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया और बाद में ऐसा पत्र लिखा जिसे पढ़कर मुझे बेहद तकलीफ हुई। बल्कि कहूं कि पुरस्कार वापसी के पूरे प्रकरण में यदि मुझे सबसे अधिक क्लेश हुआ तो सच्चिदानंदन जी के पत्र से। उन्होंने अखबारों में तोड़-मरोड़कर छापे गए मेरे बयानों और सुनी-सुनाई बातों के आधार पर मुझे ऐसा विशेषण दिया जो 75 वर्षों के जीवन से मुझे किसी ने नहीं दिया था। अर्थात् 'अहंकारी' और 'निरंकुश'।

सच्चिदानंदन जी से मैं जब भी जरूरत होती तुरंत फोन मिलाकर बात करता था, उनसे व्यक्तिगत काम के लिए भी कहता था और वे करते भी थे। मैं समझ नहीं पाता कि उन्होंने मुझे फोन न करके सचिव केमाध्यम से पत्र क्यों लिखा? फोन, जो सबसे सहज और विश्वसनीय माध्यम है, से तुरंत बात हो गई होती और मुझे उनके सुझाव से खुशी होती। मैंने हमेशा उन्हें इतना आदर दिया जितना शायद ही उन्हें किसी पूर्व अध्यक्ष से मिला हो। वे भी मेरे प्रति मधुर व्यवहार करते थे।

अपने बारे में इतना तो कह सकता हूं कि मुझमें और चाहे जो भी दुर्गुण हों, अहंकार और निरंकुशता तो नहीं है। मेरे लिए अब भी यह रहस्य है कि मेरे किस व्यवहार ने या किसी के किस दबाव ने सच्चिदानंदन जी को यह लिखने के लिए विवश किया कि वे मेरे जैसे व्यक्ति के साथ काम नहीं कर सकते। वे कई वर्षों तक अकादेमी के सचिव रह चुके हैं, इस बीच देश में असहिष्णुता की अनेक घटनाएं घटी होंगी, उस समय के अध्यक्षों ने क्या स्टैंड लिये,

सच्चिदानंदन जी के साथ उनके कैसे व्यवहार रहे, इन सब बातों की स्मृति तो उन्हें होगी ही। मैं उनका विवरण नहीं देना चाहता।

साहित्य अकादेमी की महत्तर सदस्य कृष्णा सोबती ने पुरस्कार तो नहीं लौटाया मगर 16 अक्टूबर, 2015 को मुझे पत्र लिखकर सीधे मुझसे इस्तीफे की मांग की। उन्होंने 'लेखक की बौद्धिक अस्मिता और रचनात्मक सम्मान' की हो रही अवहेलना और तौहीन को देखते हुए मुझे अध्यक्ष पद त्याग देने को कहा। उनका पत्र सुझाव देने के लहजे में नहीं बल्कि आदेशात्मक था। उन्होंने पत्र में यू.आर. अनंतमूर्ति के उस वक्तव्य को उद्धृत किया था जो उन्होंने 1993 में अकादेमी अध्यक्ष पद ग्रहण करते हुए कहा था कि वे ''संस्था के बहुलतावाद और स्वायत्तता'' की रक्षा करेंगे। पत्र के अंत में उन्होंने गोपीचंद नारंग का यह वाक्य उद्धृत किया था – ''लेखन एक सामाजिक क्रिया है और विरोध करना रचनात्मकता का ही एक अंग है।'' कृष्णा सोबती जी से न मेरी कभी मुलाकात हुई है , न कोई खतोखिताबत रही है। हां 'दस्तावेज' पत्रिका के अंक मैं उन्हें भिजवाता रहा हूं। पता नहीं वह उन्हें मिलती रही है या नहीं।

अपने बारे में कहना ठीक नहीं मगर इस प्रसंग में निवेदन करना होगा कि लेखकीय स्वाधीनता, स्वायत्तता और सम्मान के बारे में मैं जीवन-भर लिखता रहा हूं। मेरी आलोचना पुस्तक 'रचना के सरोकार' की मूल थीम यही है। मेरी एक और आलोचना पुस्तक 'आलोचना के हाशिए पर' (2008) का पहला ही वाक्य यह है – ''राज्य, समाज, धर्म और विचारधारा – ये चारों जब कट्टर होते हैं और अपने सच को अंतिम मानने लगते हैं तो रचनाकार के शत्रु बन जाते हैं। राज्य का सर्वसत्तावादी तानाशाही रूप, समाज का संकीर्ण रूढ़िवादी रूप, धर्म का कर्मकांडी सांप्रदायिक रूप और विचारधारा का पार्टी पिछलग्गू रूप – ये चारों रचनाकार के शत्रु हैं।'' '

दस्तावेज' के अनेक संपादकीयों में मैंने राजनीति के बड़े-बड़े नेताओं के नाम लेकर विरोध प्रकट किए हैं। शायद ही किसी साहित्यिक पत्रिका में ऐसे कड़े संपादकीय प्रकाशित हुए हों। किसानों की आत्महत्या और भूमि अधिग्रहण के बारे में मैंने तब सम्पादकीय टिप्पणियां लिखी थीं जब आदरणीय अन्ना हजारे जी दिल्ली के रंगमंच पर नहीं आए थे। किसी लेखक गुट या मीडिया द्वारा न उछाले जाने के कारण कृष्णा जी को मेरा उपर्युक्त लेखन पढ़ने को न मिला होगा। लेकिन यदि मेरे इस्तीफे से देश में लेखक की अस्मिता और सम्मान कायम रहे तो मैं तुरंत अकादेमी छोड़ने को तैयार हूं। मैं तो अकादेमी से कोई सुविधा भी नहीं लेता हूं जिसे अकादेमी का हर कर्मचारी जानता है। मुझे लगता है कृष्णा जी को मेरे बारे में उनके किसी प्रिय पात्र ने झूठी सूचना और गलत प्रेरणा दी।

पुरस्कार लौटाने वाले लेखकों में सबसे अधिक सवाल अशोक वाजपेयी से किए गए। वास्तव में वे ही इस आंदोलन के सूत्र संचालक भी थे। उनसे पूछे गए प्रश्नों , जो उनके पूर्व के कार्य-कलापों के बारे में थे , के कोई उत्तर उन्होंने नहीं दिए , फिर भी सारा हिंदी जगत उसे जानता है, क्योंकि वे हमेशा मीडिया और विवादों में रहे हैं। मैं यहां पूछे गए उन सवालों को बिना दुहराए, अपने कार्यकाल में अकादेमी के साथ उनके रिश्ते के बारे में दो उल्लेख करना चाहता हूं। असहिष्णुता आंदोलन के डेढ़ वर्ष पहले 16 मार्च, 2014 को उन्होंने 'जनसत्ता' में एक टिप्पणी लिखी – ''विश्व कविता द्वैवार्षिकी: एक अंतर्कथा ''। इस टिप्पणी की अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं – ''जब तक साहित्य अकादेमी का वर्तमान निजाम पदासीन है तब तक मैं एक लेखक के रूप में अपने को साहित्य अकादेमी से अलग रखूंगा। साहित्य अकादेमी के एक और निजाम के दौरान पहले भी मैंने अपने को उससे अलग रखा था। मेरे न होने से अकादेमी को कोई फर्क नहीं पड़ता और मुझे अकादेमी के होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। एक सार्वजनिक और राष्ट्रीय संस्थान के अनैतिक आचरण में सहभागिता करना लेखकीय अंतःकरण की अवमानना होगी।''

इस टिप्पणी की अंतर्कथा अति संक्षेप में यह है कि वाजपेयी जी विश्व कविता के आयोजन में अपने रजा फाउंडेशन को अकादेमी के साथ जोड़ना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने कांग्रेस शासन काल में प्रशासन के बड़े अधिकारियों से काफी दबाव डलवाया। यह मामला कई महीनों चला और अंत में साहित्य अकादेमी ने जब रजा फाउंडेशन को साथ न लेने का निर्णय लिया तो वाजपेयी जी ने क्रुद्ध होकर उपर्युक्त टिप्पणी लिखी। इस टिप्पणी से अकादेमी और मेरे विरुद्ध उनका गुस्सा जाहिर है।

दूसरी टिप्पणी उन्होंने वर्तमान घटनाक्रम के चार महीने पहले लिखी , 31 मई, 2015 को 'जनसत्ता' में ही, जो इस प्रकार है – **''साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष एक हिंदी साहित्यकार हैं , जो विनयशील और उदार दृष्टि रखते हैं पर उनका मिडियाक्रिटी के प्रति आकर्षण इतना प्रबल है और साहित्य अकादेमी की बाबूगिरी ने उनको इस कदर आतंकित किए रखा है कि साहित्य अकादेमी मीडियाक्रिटी का भीड़ भरा परिसर बनकर रह गई है। नई सरकार के प्रति वफादारी का, जिसकी जरूरत यों अकादेमी को नहीं होनी चाहिए, क्योंकि वह स्वायत्त है, आलम यह है कि उसने स्वच्छता अभियान की पुष्टि में एक साहित्यिक आयोजन करना जरूरी समझा। समय आ गया है कि अब स्वयं लेखकों-कलाकारों को अपने साधनों से स्वायत्त राष्ट्रीय संस्थाएं बनाने की सोचना चाहिए , जो सहज खुले संवाद और द्वंद्व के मंच हों और उनके व्यावसायिक हितों , अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करने में सन्नद्ध हों।** ''इस टिप्पणी में भी साहित्य अकादेमी और व्यक्तिगत रूप से मेरे विरुद्ध उनकी शिकायत है। यदि इन पंक्तियों में व्यक्त ध्वनि सुनी जाए तो वह है कि साहित्य अकादेमी की उपेक्षा कर प्रतिभावान लेखकों-कलाकारों का एक अलग मंच बने।

असहिष्णुता आंदोलन के लगभग समापन काल में 22 नवंबर, 2015 को अशोक वाजपेयी ने फिर लिखा, जनसत्ता में ही – ''एक लेखक की दिन दहाड़े हत्या के बाद साहित्य अकादेमी ने शोकसभा तक नहीं की। '' इसके एक महीने पहले ( 23 अक्टूबर, 2015) उन्हें अकादेमी की कार्यकारिणी का प्रस्ताव मिल चुका था जिसमें शोकसभा का पूरा ब्यौरा है तथा अखबारों में और अकादेमी के वेबसाइट पर भी यह सूचना उपलब्ध थी कि अकादेमी ने बेंगलुरु में बाकायदा निमंत्रण-पत्र छापकर एक बड़ी शोकसभा आयोजित की थी। फिर तथ्य को छिपाकर इस प्रकार का बयान क्यों? स्पष्ट है कि उनके विरोध का प्रच्छन्न एजेंडा था –

1. मोदी विरोध, जिसका ऐलान उन्होंने आम चुनाव के पहले ही कर दिया था।
2. साहित्य अकादेमी विरोध, जिसकी घोषणा कलबुर्गी जी की हत्या के डेढ़ वर्ष पूर्व ही कर चुके थे।

राजनीतिक बुद्धिजीवी अपने निजी विरोध को वैचारिक जामा पहनाकर जनता के सामने लाता है। यदि वह अपना भीतरी मंतव्य सीधे-सीधे प्रकट कर दें तो फिर प्रतिभावान कैसे माना जाएगा?

23 अक्टूबर, 2015 को अकादेमी ने पुरस्कार वापसी पर अपनी कार्यकारिणी समिति की आपात बैठक बुलाई थी। बैठक के पहले ही लेखक संगठन ने जुलूस निकालने और पत्रक देने की घोषणा कर रखी थी।

एक पत्रक जनवादी लेखक संघ, जन संस्कृति मंच और वामदल लेखकों का था जिसमें देश में लगातार बढ़ रही हिंसक असहिष्णुता और फासीवादी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए मांग की गई थी कि कार्यकारी मंडल अभिव्यक्ति की आजादी और असहमति के अधिकार की रक्षा करे। उसमें यह भी था कि वर्तमान अकादेमी अध्यक्ष यदि अपने शर्मनाक रवैये और अपमानजनक बयानों के लिए माफी न मांगे तो उनसे इस्तीफे की मांग की जाए। दूसरे पत्रक में कुछ रचनाकारों द्वारा लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकार के विरुद्ध कुत्सित अभियान को अस्वीकार करने तथा साहित्य अकादेमी को किसी प्रकार के दबाव में न आने के लिए कहा गया था। वामदलों ने पत्रक देते हुए यह भी कहा था कि उनका पत्रक बैठक में पढ़ दिया जाए। बैठक में कुल 27 सदस्यों में 25 सदस्य उपस्थित थे। उन्होंने खुलकर और गंभीरतापूर्वक विचार किया। लगभग सभी सदस्यों ने विचार-विमर्श में हिस्सा लिया।

मैंने कार्यसमिति के सामने वामदलों का वह पत्रक पढ़कर सुनाया जिसमें मेरे इस्तीफे की मांग की गई थी। समिति ने उस पत्रक को खारिज कर दिया। जब मैंने यह कहा कि कलबुर्गी जी की शोकसभा दिल्ली में नहीं हुई , इसके लिए कुछ लेखक नाराज हैं , तो एक सदस्य ने अंग्रेजी में कहा- why in delhi , delhi is not india। एक-दूसरे सदस्य ने कहा, जब अकादेमी की बैठकें देश-भर में होती हैं और लेखकों की जन्म शताब्दियां उनके गृहनगर में आयोजित

होती हैं तो शोकसभा उसके गृह प्रदेश में क्यों नहीं आयोजित हो? वामदलों का पत्रक सुनने के बाद कार्यकारिणी ने अपने प्रस्ताव के अंत में एक पंक्ति और बढ़ा दिया जो एक तरह से मुझमें उसका विश्वास मत था। सर्वसम्मति से पारित मूल प्रस्ताव इस प्रकार है –

**प्रस्ताव**

**साहित्य अकादेमी**

**दिनांक: 23-10-2015**

23 अक्टूबर, 2015 को संपन्न साहित्य अकादेमी की विशेष बैठक प्रो. एम.एम. कलबुर्गी की हत्या की कड़े शब्दों में निंदा करती है और प्रो. एम.एम. कलबुर्गी तथा अन्य बुद्धिजीवियों और विचारकों की दुःखद हत्या पर गहरा शोक प्रकट करती है। अपनी विविधताओं के साथ भारतीय भाषाओं के एकमात्र स्वायत्त संस्थान के रूप में , अकादेमी भारत की सभी भाषाओं के लेखकों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का पूरी दृढ़ता से समर्थन करती है और देश के किसी भी हिस्से में , किसी भी लेखक के खिलाफ किसी भी तरह के अत्याचार या उनके प्रति क्रूरता की बेहद कठोर शब्दों में निंदा करती है। हम केंद्र सरकार और राज्य सरकारों से अपराधियों के खिलाफ तुरंत कार्रवाई करने की मांग करते हैं और यह भी कि लेखकों की भविष्य में भी सुरक्षा सुनिश्चित की जाए। भारतीय संस्कृति का बहुलतावाद बाकी दुनिया के लिए अनुकरणीय रहा है। इसलिए इसे पूरी तरह संरक्षित रखा जाना चाहिए। साहित्य अकादेमी मांग करती है कि केंद्र और सभी राज्य सरकारें हर समाज और समुदाय के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का माहौल बनाए रखें और समाज के विभिन्न समुदायों से भी विनम्र अनुरोध करती है कि जाति , धर्म, क्षेत्रा और विचारधाराओं के आधार पर मतभेदों को अलग रखकर एकता और समरसता को बनाए रखें।

साहित्य अकादेमी लेखकों के लिए लेखकों की संस्था है जो लेखकों द्वारा ही निर्देशित-संचालित होती है। पुरस्कारों सहित इसके सभी निर्णय लेखकों द्वारा ही लिये जाते हैं। इस संदर्भ में, जिन लेखकों ने अपने पुरस्कार वापस किए हैं या जिन्होंने अकादेमी से अपने को अलग किया है, हम उनसे अनुरोध करते हैं कि वे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें।

अकादेमी के कार्यकारी मंडल को विश्वास है कि अकादेमी की स्वायत्तता , जिसने 61 वर्षों के इसके इतिहास में ऊंचाइयां प्राप्त की हैं, को लेखकों का सहयोग और मजबूत करेगा।

कार्यकारी मंडल अपनी बैठक में स्वीकार करता है कि प्रो. कलबुर्गी की हत्या के बाद साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष ने उपाध्यक्ष से फोन पर बात की कि वे प्रो. कलबुर्गी के परिवार से संपर्क करें और इस हत्या के खिलाफ अकादेमी की ओर से संवेदनाएं अर्पित करें।

उपाध्यक्ष, साहित्य अकादेमी तथा कन्नड़ भाषा के संयोजक , मंडल और कुछ प्रख्यात कन्नड़ रचनाकारों ने एक सार्वजनिक सभा में प्रो. कलबुर्गी की निर्मम हत्या की दृढ़ता के साथ निंदा की। उन्होंने प्रो. कलबुर्गी के परिवार से हत्या के कुछ ही दिनों के भीतर संपर्क किया। वे प्रो. कलबुर्गी के परिवार सहित मुख्यमंत्राी से परिवार की सुरक्षा और हत्या की जांच के संबंध में मिले। अकादेमी ने दिनांक 30 सितंबर, 2015 को बेंगलूरु में एक विशेष सार्वजनिक शोकसभा की जिसमें प्रो. एम.एम. कलबुर्गी के सम्मान में प्रसिद्ध लेखक भारी संख्या में सम्मिलित हुए और हत्या की निंदा की तथा उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

उसके बाद कई अन्य भाषाओं के संयोजकों ने साहित्य अकादेमी की ओर से सार्वजनिक प्रस्ताव जारी करके इस दुःखद घटना की निंदा की और न्याय की मांग की।

श्रीनगर में कश्मीरी के संयोजक मंडल और छह भाषाओं के संयोजकों ने सार्वजनिक रूप से हत्या की निंदा की। साहित्य अकादेमी के प्रतिनिधियों और हैदराबाद में , तेलुगु के लेखकों ने तेलुगु भाषा के संयोजक की ओर से एक सार्वजनिक प्रस्ताव जारी कर हत्या की घोर निंदा की।

कार्यकारी मंडल इस हत्या की पुनः निंदा करता है। पूर्व से भारतीय लेखकों की हुई हत्याओं और अत्याचारों को लेकर वह बेहद दुःखी है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जी रहे नागरिकों के खिलाफ हो रही हिंसा की भी वह कड़े-से-कड़े शब्दों में निंदा करता है।

कार्यकारी मंडल, अकादेमी के अध्यक्ष के सतर्क और कर्मठ नेतृत्व में साहित्य अकादेमी की गरिमा, परंपरा और विरासत को बरकरार रखने के लिए उनके प्रति सर्वसम्मति से अपना समर्थन व्यक्त करता है।

**(चंद्रशेखर कंबार)** **विश्वनाथ प्रसाद तिवारी)**

**उपाध्यक्ष, साहित्य अकादेमी** **अध्यक्ष, साहित्य अकादेमी**

उपर्युक्त प्रस्ताव उसी दिन मीडिया और लेखकों को भेज दिया गया जिसका देश-भर में व्यापक स्वागत हुआ। साहित्य अकादेमी में अनेक वर्षों तक उपसचिव रहे हिंदी लेखक श्री विष्णु खरे जो अपनी निर्भीक और बेबाक अभिव्यक्तियों के लिए जाने जाते हैं, ने अपने ब्लाग पर लिखा – ''मुझे उस प्रस्ताव ने चकित और अवाक् कर दिया जो अकादेमी के सर्वोच्च प्राधिकरण, उसके एक्जीक्यूटिव बोर्ड (कार्यकारिणी) ने कल 23 अक्टूबर को अध्यक्ष विश्वनाथ प्रसाद तिवारी तथा उपाध्यक्ष चंद्रशेखर कंबार के नेतृत्व में दिल्ली के अपने मुख्यालय में सर्वसम्मति से पारित किया है। अकादेमी के इतिहास में उसकी शब्दावली अभूतपूर्व है ...सर्व संशयवादी लेखक बुद्धिजीवी इसे भी पाखंडी और धूर्ततापूर्ण कहकर खारिज कर देंगे। लेकिन

बहुत याद करने पर भी मुझे स्मरण नहीं आता कि वामपंथी संगठनों को छोड़कर स्वतंत्र भारत के इतिहास में किसी निजी , सरकारी या अर्ध-सरकारी संस्था ने इतना सुस्पष्ट , बेबाक, प्रतिबद्ध, रैडिकल और दुस्साहसी वक्तव्य कभी पारित और सार्वजनिक किया हो।''

कार्यकारिणी के प्रस्ताव के साथ जब लेखकों से लौटाए गए पुरस्कार वापस लेने का अनुरोध किया गया तो उन्होंने प्रस्ताव की प्रशंसा की , मगर इसे विलंब से आया बताया। जब प्रस्ताव ठीक है और इसी से अकादेमी के स्टैंड का पता लग गया तो फिर पुरस्कार स्वीकार करने में एतराज क्यों? क्या लेखकों के मन में गांठ कुछ दूसरी है? उदाहरण भी देख लीजिए। **7-8 नवंबर को लखनऊ के 'कथाक्रम' में शामिल कुछ लेखकों ने बिहार में लालू प्रसाद यादव की जीत पर मिठाइयां बांटी। इनमें वीरेंद्र यादव , काशीनाथ सिंह और अखिलेश जी थे। यह असहिष्णुता विरोध है या मोदी विरोध** ?मोदी जी का विरोध करने को कोई भी लेखक स्वतंत्र है , मगर 'लोकतंत्र' का विरोध यदि कोई लेखक करता है तो उसके बारे में सोचना पड़ेगा। नामवर सिंह ने सही कहा है , ''लोकतंत्र का तकाजा है कि भारत के संविधान के अनुसार , कोई भी मान्य दल अगर सरकार बनाता है, चाहे हमने उसे वोट न दिया हो या हमारी विचारधारा का न हो , तो भी वह हमारी ही सरकार है।'' (अगासदिया, अक्टूबर-दिसंबर 2015)

13 अक्टूबर, 2015 को कथाकार तेजिंदर शर्मा ने लंदन से एक मेल भेजा , जिसमें लिखा था – **''यह सच है कि जो लोग आज साहित्य अकादेमी के पुरस्कार वापस करके विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पर यह दबाव बना रहे हैं उनका मुख्य उद्देश्य पहले हिंदी बेल्ट के अध्यक्ष को गद्दी से उतारना है , क्यों कि वह वामहस्त नहीं हैं। यह मार्क्सवादी और कांग्रेसी समर्थक साहित्यकारों के नाटक से बढ़कर कुछ नहीं है।** '' इस प्रकार की अनेक टिप्पणियां फेसबुक पर आ रही थीं और चिट्ठियां भी मुझे प्राप्त हो रही थीं। मेरा विरोध क्यों है , उसे भी अधिकांश या लगभग सभी हिंदी लेखक जानते हैं। यह एक कि मैं मार्क्सवादी नहीं हूं बल्कि मार्क्सवाद के विरोध में अनेक बार लिख चुका हूं। दूसरा यह , कि मैं किसी लेखक गुट या राजनीति दल से जुड़ा नहीं हूं न किसी प्रभावशाली लेखक के प्रभाव में हूं और तीसरा, मैं अंग्रेजीदाॅ नहीं हूं। हिंदी की अपसंस्कृति यह है कि जो मार्क्सवादी नहीं , उसे लेखक ही नहीं माना जाता। जो किसी गुट में नहीं , उसकी चर्चा नहीं की जाती और अंग्रेजीदां लोगों की दृष्टि में हिंदी महत्त्वहीन है।

इसी बीच मेरे प्रति घटी वामदलों की असहिष्णुता की एक उल्लेखनीय घटना। 25 नवंबर, 2015 को इलाहाबाद में मीरा स्मृति सम्मान एवम् पुरस्कार समारोह था जिसकी अध्यक्षता मैं कर रहा था। पुरस्कार वापसी विवाद के कारण प्रलेस , जलेस और जसम तीनों लेखक संगठनों के नेताओं ने इसका बहिष्कार किया। **जनवादी लेखक संघ के नेता दूधनाथ सिंह ने इस समारोह के आयोजक और साहित्य भंडार प्रकाशन के मालिक श्री सतीश चंद्र अग्रवाल से यह कहा कि हो सकता है उनके संगठन का कोई व्यक्ति मेरे मुख पर कालिख पोत दे या जूता चला**

**दे।** इस संदर्भ में जन संस्कृति मंच के अध्यक्ष डाॅ. राजेंद्र कुमार ने दूधनाथ जी को चेतावनी दी कि यदि संगठन के सदस्य ऐसा करेंगे, तो वह (राजेंद्र कुमार जी) अखबारों को बयान देकर जन संस्कृति मंच से त्यागपत्र दे देंगे। यह बात मुझे आयोजकों ने ही बताई। मुझे लगभग 25 वर्ष पूर्व का लिखा और छपा अपना ही यह वाक्य याद आ रहा था – ''हिंदी के लेखक संघ दुनिया को बदलने में तो कामयाब नहीं हुए , मगर हर शहर में उन्होंने लेखकों के आपसी संबंध जरूर बदल दिए।''

पुनश्च

22 जुलाई, 2016 को ''दैनिक जागरण'' में यह खबर प्रकाशित हुई है – प्रधानमंत्राी नरेंद्र मोदी की नीतियों से नाराज होकर पुरस्कार लौटाने वाले साहित्यकार , लेखक, कलाकार, नीतीश के अभियान को साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक गतिविधियों के माध्यम से जन-जन तक ले जाएंगे। नीतीश के संघ मुक्त भारत अभियान में ये सभी साथ देने को तैयार हैं। ... दिल्ली में दो दिनों पूर्व जदयू के प्रधान राष्ट्रीय महासचिव के.सी. त्यागी के आवास पर इन साहित्यकारों एवम् लेखकों की बैठक हुई , जिसमें नीतीश कुमार शामिल हुए। प्रमुख चेहरों में अशोक वाजपेयी, ओम थानवी, विष्णु नागर, सीमा मुस्तफा, मंगलेश डबराल, प्रो. अपूर्वानंद, पुरुषोत्तम अग्रवाल आदि शामिल थे।''

**अब तो कुछ लोगों के इस कथन पर भी विश्वास किया जा सकता है कि पुरस्कार वापसी का नाटक बिहार चुनाव में जदयू के पक्ष में और भाजपा के विरुद्ध वातावरण बनाने के लिए था।**

लोकतंत्र में लेखक को किसी पार्टी का पक्ष लेने और किसी का विरोध करने की स्वतंत्रता है और होनी चाहिए। लेकिन दूसरे लेखकों , बुद्धिजीवियों और देश की जनता को भ्रमित करने की कोशिश उसे नहीं करनी चाहिए। अन्य चीजों की तरह सहिष्णुता भी सापेक्षिक होती है। एक पक्ष यदि सहिष्णु नहीं है तो वह दूसरे को भी उसका उल्लंघन करने को प्रेरित करेगा। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मतलब दूसरों की भावनाओं को चोट पहुंचाना नहीं है। स्वाधीनता हमारे समय की सबसे मूल्यवान चीज है, पर सबसे खतरनाक भी वही है।